8

भाषा का प्रयोजनमूलक स्वरूप और हिन्दी

-कृष्ण कुमार गोस्वामी

भाषा एक सामाजिक यथार्थ है। इसका विकास मानव के सामाजिक जीवन के विभिन्न प्रयोजनों के संप्रेषण के लिए हुआ है। यह सामान्य संप्रेषण नहीं होता, वरन् दैनिक जीवन के विभिन्न प्रयोजनों को साधने के लिए होता है। सामाजिक जीवन में इन विभिन्न संदर्भों, स्थितियों और कार्य-क्षेत्रों में भाषा का प्रयोग होने से उसके कई रूप उभरने लगते हैं। वस्तुत: भाषा अपने आप में समरूपी होती है, परन्तु प्रयोग में आने से वह विषमरूपी बन जाती है। इन्हीं प्रयोगगत भेदों के कारण कई भाषा भेद दिखाई देते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्य का मस्तिष्क इतना सृजनशील होता है कि विभिन्न स्थितियों, संदर्भों और उद्देश्यों के अनुरूप वह भिन्न-भिन्न भाषा शैलियों का प्रयोग करता है और ये शैलियाँ सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रयोजनपरक संदर्भों में नियंत्रित होती हैं।

इसी संदर्भ में भाषा के मुख्य रूप से दो पक्ष हैं- एक का संबंध मानव की सौन्दर्यपरक अनुभूतियों के आलंबन से होता है और दूसरा पक्ष भाषा के प्रयोजनपरक आयामों से जुड़ा रहता है। भाषा के सौन्दर्यपरक आयाम में भाषा सर्जनात्मक होती है, जिसका विकास साहित्य की भाषा के रूप में होता है। यह भाषा कविता, उपन्यास, नाटक, कहानी, आलोचना आदि विभिन्न साहित्यिक विधाओं में निखर कर आती है। इसके साथ-साथ यह भाषा देश-विशेष या क्षेत्र-विशेष के सामाजिक , सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों को अपने भीतर समेटे होती है। भाषा के दूसरे पक्ष का संबंध हमारी सामाजिक आवश्यकताओं और जीवन की उस व्यवस्था से होता है जो व्यक्तिपरक होकर भी समाज-सापेक्ष होता है। यह भाषा का प्रकार्यात्मक आयाम है जिसका प्रयोग किसी प्रयोजन-विशेष या कार्य-विशेष के संदर्भ में होता है। यह भाषा प्रशासन व्यवस्था और तकनीकी क्षेत्रों में आविष्कारोन्मुख होकर देश-विशेष या क्षेत्र-विशेष के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्रकार्य की दृष्टि में प्रयोजनमूलक भाषा तथा साहित्यिक भाषा एक ही है। लेकिन इनके स्वरूप में मूल अंतर यह कि साहित्यिक भाषा में अर्थ व्यंजनाश्रित और लाक्षणिक होता है तथा प्रयोजनमूलक भाषा अभिधापरक और एकार्थी होती है ताकि कहने वाले या लिखने

वाले व्यक्ति की बात का निश्चित और सही आशय समझा जा सके। वस्तुत: प्रयोजनमूलक भाषा में व्यंजनार्थ की कोई गुंजाइश नहीं होती और उसमें यह प्रयास रहता है कि वह स्वत: स्पष्ट और स्वत: पूर्ण हो तथा वक्ता या लेखक का मंतव्य निश्चित और सटीक हो। उदारहरण के लिए; 'पानी' शब्द का प्रयोग साहित्य में तीन अर्थों में होता है- चमक, जल और इज्जत।

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न उबरे, मोती मानस चून।

प्रयोजनमूलक भाषा में 'पानी' जल या तरल पदार्थ के अर्थ में होता है। प्रयोजनमूलक भाषा-सीधी-सपाट भाषा होती है और इसका सामाजिक तथा सांस्कृतिक परंपराओं से कोई विशेष संबंध नहीं होता, लेकिन साहित्यिक भाषा लक्षणापरक होती है और उसका संबंध संस्कृति से पूर्णतया होता है। हिन्दी में कमल, जलज, पंकज जैसे एक ही अर्थ देने वाले शब्द अपने भीतर सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ समेटे हुए हैं जबकि विज्ञान की भाषा में 'कमल' शब्द वनस्पति के रूप में एक विशेष फूल के अर्थ में होता है और इसका संबंध सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपरा से नहीं होता। इस प्रकार साहित्यिक भाषा का लक्ष्य सौन्दर्यानुभूति अथवा रसास्वादन होता है जबकि प्रयोजनमूलक भाषा का लक्ष्य सेवा-माध्यम होता है जो जीविकोपार्जन का साधन बनता है।

सामान्य भाषा और विशिष्ट भाषा

यह सही है कि भाषा का साहित्यिक और प्रयोजनमूलक रूप सामान्य बोलचाल की भाषा से काफी भिन्न होता है। सामान्य बोलचाल की भाषा में हम रोजमर्रा के जीवन में कई लोगों से बात करते रहते हैं। हमें अलग-अलग लोगों से अलग-अलग ढंग से बात करनी होती है। माता-पिता, भाई-बहन, मित्र, दुकानदार, अध्यापक आदि से बात करते समय भाषा का विभिन्न रूपों में प्रयोग किया जाता है। लेकिन भाषा के ये रूप भिन्न-भिन्न होते हुए भी इनके बोलने और समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। यह सामान्य बोलचाल की भाषा है और यह जीवन में सामान्य प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होती है। इसका ज्ञान सामान्य जीवन के परिवेश से ही व्यक्ति प्राप्त कर लेता है और इसके लिए किसी औपचारिक शिक्षा या प्रयास की आवश्यकता नहीं होती।

विशिष्ट प्रयोजनों में विशिष्ट वर्ग द्वारा और विशिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उपयोग की जाने वाली भाषा विशिष्ट भाषा होती है। इसमें विषय का प्रतिपादन और निर्धारण होता है। इस का ज्ञान विशेष शिक्षा या विशेष अभ्यास से प्राप्त किया जाता है। इस विशिष्ट भाषा में अपने-अपने विषय की शब्दावली और अपनी संरचना होती है, जो इसे विशेष रूप प्रदान करती है। डाक्टरी की विशिष्ट भाषा में डाक्टरी की शब्दावली होती है; इंजीनियरी की भाषा में इंजीनियरी की, कार्यालय की भाषा में कार्यालय की और विज्ञान की अपनी वैज्ञानिक शब्दावली होती है। वास्तव में सामान्य भाषा और विशिष्ट भाषा एक होती है किन्तु शब्दावली और संरचना की दृष्टि से दोनों अलग-अलग हो जाती हैं। सामान्य भाषा की अभिव्यक्ति-शैली लाक्षणिक, व्यंजनापरक या अनेकार्थी या अलंकारपूर्ण भी हो सकती है जबकि विशिष्ट भाषा अभिधा-प्रधान, गंभीर, अलंकार-रहित, सीधी, स्पष्ट और एकार्थी होती है। लेकिन यह बात अवश्य है कि इसमें एक ओर सामान्य बोलचाल की भाषा की रवानी होती है तो दूसरी ओर उसका मानक रूप भी रहता है जो आमतौर पर सामान्य भाषा में नहीं होता। इस मानक रूप में एकरूपता, सुनिश्चितता और शब्द प्रयोग का औचित्य निहित रहता है। विशेष प्रयोजनों वाली ऐसी विशिष्ट भाषा को प्रयोजनमूलक भाषा भी कहा जाता है।

प्रयोजनमूलक भाषा: स्वरूप और क्षेत्र

प्रयोजनमूलक भाषा से अभिप्राय 'प्रयोजन' या 'निष्प्रयोजन' के विपरीतार्थ में नहीं, वरन् वह भाषा के व्यावहारिक पक्ष को उजागर करने के लिए प्रयुक्त भाषायी रूप है। यह भाषायी रूप सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त होता है और इसका प्रयोजनमूलक विशेषण इसके व्यावहारिक और कामकाजी पक्ष को अधिक स्पष्ट करता है। भाषा के प्रयोजनमूलक रूप को अंग्रेजी में 'फंक्शनल लेंग्वेज' (Functional Language) या 'लेंग्वेज फार स्पेसिफिक पर्पज' (Language for specific purpose) कहते हैं जिसमें विभिन्न प्रकार्यों या प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त भाषा का अर्थ निहित है। हिंदी के संदर्भ में कुछ विद्वानों ने 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' की अपेक्षा 'व्यावहारिक हिन्दी' या 'कामकाजी हिन्दी' नाम अधिक उपयुक्त समझा है। 'व्यावहारिक हिन्दी' शब्द का प्रयोग इसलिए भी हो रहा है क्योंकि कुछ विद्वानों को प्रयोजनमूलक हिन्दी से यह लगता है कि कोई ऐसी हिन्दी भी है जिसे निष्प्रयोजनपरक कहा जा सकता है। इस संदर्भ में कुछ विद्वानों ने 'प्रयोजनमूलक' विशेषण को ही अर्थगर्भित और उचित बताया है। डॉ. नगेन्द्र (1987)

का कथन है कि "वस्तुत: प्रयोजनमूलक हिन्दी के विपरीत अगर कोई हिन्दी है तो वह निष्प्रयोजनमूलक नहीं वरन् आनन्दमूलक हिन्दी है। आननद व्यक्ति-सापेक्ष है और प्रयोजन समाज-सापेक्ष। आनन्द स्वकेन्द्रित होता है और प्रयोजन समाज की ओर इशारा करता है। हम आनन्दमूलक हिन्दी के विरोधी नहीं हैं, इसलए आनन्दमूलक साहित्य के हम भी हिमायती हैं। पर, सामाजिक आवश्यकताओं के संदर्भ में हम संप्रेषण के बुनियादी आधार को भी अपनी नज़र से ओझल नहीं करना चाहते।" प्रयोजनमूलक विशेषण में निहित संकेत को स्पष्ट करते हुए और निष्प्रयोजन हिन्दी की अवधारणा को अस्वीकार करते हुए डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा (1987) कहते हैं कि "निष्प्रयोजन हिन्दी कोई चीज नहीं है लेकिन प्रयोजनमूलक विशेषण उसके व्यावहारिक पक्ष को अधिक उजागर करने के लिए प्रयुक्त किया गया है।"

वास्तव में 'व्यावहारिक हिन्दी' नामकरण से यह भ्रम पैदा होता है कि व्यावहारिक हिन्दी से अभिप्राय ऐसी हिन्दी से है जिसमें भाषिक एवं सामाजिक संदर्भ की अपेक्षा भाषा के व्यावहारिक संदर्भ पर अधिक बल दिया जाता है। व्यावहारिक हिन्दी का अर्थ है दैनिक जीवन में कार्य साधन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली हिन्दी। इस भाषा में व्याकरणिक संरचना पर ध्यान न देकर उसकी व्यावहारिक उपयोगिता पर बल दिया जाता है। इस के विपरीत प्रयोजनमूलक भाषा में संपर्क तथा संप्रेषण की आवश्यकता होती है जिसकी अभिव्यक्ति प्रशासन, विधि, विज्ञान, पत्रकारिता आदि विविध प्रयोजनों के रूप में होती है। विविध प्रयोजनों में प्रयुक्त होने वाली भाषा में शब्दावली, वाक्य-रचना और शैली के स्तर पर भेद होता है। यह भेद इस बात पर निर्भर करता है कि कौन, किस से, कब और किसलिए बात कर रहा है या संपर्क कर रहा है। उदाहरण के लिए, कक्षा में अध्यापक और छात्र के भाषिक संप्रेषण और न्यायालय में वकील तथा उसके मुवक्किल या वकील तथा न्यायाधीश के भाषिक संप्रेषण की शब्दावली, वाक्य रचना, पदबंध, शैली और लहज़ा में अंतर होगा।इसी प्रकार, गणित, विज्ञान, चिकित्साशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, भाषाविज्ञान और साहित्य की भाषा के अंतर्गत शब्दावली, वाक्य-विन्यास और शैली में भेद दिखाई देता है। इस सारी स्थिति को ब्रिटिश स्कूल के हेलिडे, मेकिनतोश, स्ट्रिवेन्स जैसे सुप्रसिद्ध भाषाविदों ने (1964) इन शब्दों में व्यक्त किया है, "हम यह पता लगाना चाहते हैं कि लोग किस के लिए भाषा का प्रयोग करते हैं। जब हम भाषायी व्यापार को विभिन्न संदर्भों में देखते हैं तो हम भाषा-रूपों में अंतर पाते हैं जिनका चयन विभिन्न स्थितियों

में उपयुक्त ढंग से किया जाता है।" इस विवेचन से यह सिद्ध होता है कि राष्ट्रीय विकास के लिए भाषा के साहित्यिक और साहित्येतर दोनों पक्षों की आवश्यकता होती है। कोई भी भाषा कितनी विकसित तथा कितनी समर्थ क्यों न हो, इसका मूल्यांकन इस आधार पर किया जाता है कि उसके साहित्य में कितनी विविधता है तथा क्या उसमें सभी विषयों से संबंधित विचार और अभिव्यक्ति करने की क्षमता है? उस भाषा का प्रयोग किन-किन क्षेत्रों में, कितनी मात्रा में हो रहा है आदि। इसके साथ यह भी देखा जाता है कि क्या वह आधुनिक युग की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सक्षम है और भविष्य में इसकी प्रगति के लिए क्या-क्या संभावनाएँ हैं।

विभिन्न व्यवसायों के और काम-धंधों के लिए सेवा माध्यम के रूप में इस्तेमाल होने पर प्रयोजनमूलक भाषा के कई रूप सामने आते हैं। जो इस प्रकार हैं:

(1) कार्यालयी भाषा (Officialese) : यह सरकारी कामकाज और प्रशासन में प्रयुक्त होने वाला भाषा-रूप है।

(2) तकनीकी भाषा (Technicalese) : यह इंजीनियरी, विज्ञान, शास्त्र या चिकित्सा आदि का भाषा-रूप है।

(3) वाणिज्यिक भाषा (Commercialese) : यह वाणिज्य बैंक या मंडियों का भाषा-रूप है।

(4) जनसंचारी भाषा (Language of Mass Media) : यह पत्रकारिता, आकाशवाणी, दूरदर्शन और विज्ञापन में प्रयुक्त होने वाला भाषा-रूप है।

(5) समाजी भाषा (Socialese) : यह सामाजिक कार्यकर्त्ताओं और राजनीतिज्ञों की भाषा का एक रूप है।

(6) साहित्यिक भाषा (Language of Literature) : इसका प्रयोग काव्य, नाट्यशास्त्र, साहित्यशास्त्र आदि की भाषा के रूप में होता है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के प्रणेता मोटूरि सत्यनारायण (1987) ने इसी आधार पर प्रयोजनमूलक हिन्दी के छह मुख्य रूप बताए हैं- कार्यालयीन हिन्दी, तकनीकी हिन्दी, वाणिज्यिक हिन्दी, जनसंचारी हिन्दी, समाजी हिन्दी, साहित्यिक हिन्दी।

प्रयोजनमूलक भाषा और प्रयुक्ति

भाषा को उसके सामाजिक संदर्भ की दृष्टि से अलग एक और दृष्टि से भी विश्लेषित किया जा सकता है। यह दूसरी दृष्टि है शुद्ध भाषाविज्ञान की। भाषाविज्ञान भाषा को अमूर्त्त प्रतीकीकरण प्रक्रिया का परिणाम मानता है। इसके अनुसार भाषा समाज में प्रतिफलित होकर भी सामाजिक संदर्भों से मुक्त रहती है। इस वर्ग के विद्वान भाषा सिद्धांत की जब भी बात उठाते हैं वे अपनी दृष्टि केवल भाषा की संरचना तथा उसकी क्षमता तक ही सीमित कर लेते हैं। सामाजिक उपकरण और सांस्कृतिक संदर्भ के साथ जुड़कर यह अमूर्त्त प्रतीकीकरण का सिद्धांत किस प्रकार व्यवहारजन्य बनता है, किस प्रकार व्यावहारिक क्षमता, वाक्य विन्यास या पूरी भाषा को समझने में एक ठोस आधार देता है इस चर्चा को वह प्राय: नहीं उठाता। इसलिए उसके अनुसार भाषा समरूपी होती है और भाषा में दिखाई पड़ने वाले भेद-प्रभेद और कुछ नहीं बल्कि व्यावहारिक आवश्यकताओं से नियंत्रित तथा मनुष्य की मानसिक क्षमता की सीमा से बाधित आदर्श रूप के विकृत रूप होते हैं। दूसरी ओर, समाज भाषाविज्ञान भाषा को विषमरूपी मानता है और उसके अनुसार भाषा के विभिन्न रूपों का जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार प्रादुर्भाव होता है। ये विभिन्न रूप भाषा के यथार्थ और वास्तविक रूप हैं। इन भाषा-रूपों का एक अलग व्याकरण बनता है। इस व्याकरण में विविध स्थितियों तथा विषयों में भाषा व्यवहार की एक निश्चित परिपाटी होती है जिसका पालन व्यक्ति जाने-अनजाने करता है। इसी के आधार पर जीवन के विविध क्षेत्रों में भाषा के विशिष्ट प्रयोग क्षेत्र या व्यवहार-क्षेत्र बनते हैं। इन्हीं प्रयोग-क्षेत्रों या व्यवहार-क्षेत्रों से प्रयुक्ति की संकल्पना आई है। वास्तव में भिन्न कार्य क्षेत्रों के लिए जिन भाषा रूपों का प्रयोग किया जाता है उन्हें प्रयुक्ति कहा जाता है। प्रयुक्ति के आधार पर भूमिका- भेदीकरण (Role Differentiations) और स्थितियों के संदर्भ (Context of Situations) माने जाते हैं। इस प्रकार विभिन्न संदर्भगत और भूमिकागत प्रयोगों में भाषा व्यवहार में जो भेद पाए जाते हैं वे प्रयुक्ति (Register) कहलाते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति जब समाज में विभिन्न भूमिकाएँ निभाता है- कभी वह परिवार के मुखिया के रूप में व्यवहार करता है तो कभी व्यावसायिक के रूप में, कभी खिलाड़ी के रूप में, कभी वैज्ञानिक के रूप में या प्रोफेसर के रूप में,कभी वह बच्चों के पिता के रूप में, तो कभी वह पति के रूप.में भाषा का व्यवहार करता है और इस प्रकार वह निश्चित रूप से विभिन्न भाषा-रूपों का निर्वाह करता है। इसका अर्थ हुआ कि बदली हुई

सामाजिक भूमिका के संदर्भ में व्यक्ति की भाषा भी व्यक्ति, संदर्भ और भूमिका के अनुरूप बदलती रहती है। इसलिए कुछ विद्वानों ने इन भाषा-रूपों को भूमिका-सापेक्ष प्रयुक्ति (Role-Oriented Register) की संज्ञा दी है। स्थितियों के संदर्भ में भाषा के जो भेद उभर कर आते हैं उन्हें भी प्रयुक्ति कहा गया है। लेकिन इन प्रयुक्तियों के भेद के कारण व्यक्ति की सामाजिक भूमिका नहीं होती वरन् प्रयोग की विभिन्न क्षेत्रीय भूमिका होती है।

इस प्रकार विषय क्षेत्र से संबंधित जो भाषा-भेद दिखाई देते हैं उनका प्रयोग जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं के लिए विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है। इस प्रकार के भाषा रूप का प्रयोग किसी विशेष प्रयोजन से किया जाता है, इसलिए इसे 'विशिष्ट प्रयोजन की भाषा' (Language for Specific Purpose) भी कहा गया है। इस विशेष प्रयोजन की भाषा के तीन आयाम माने गए हैं: 1. वार्ताक्षेत्र 2. वार्ता प्रकार और 3. वार्ता शैली।

वार्ताक्षेत्र: भाषा रूपों में विषय के तकनीकी या अतकनीकी होने के कारण जो प्रयोगत भेद दिखाई देते हैं, उन्हीं के आधार पर प्रयुक्तियों का निर्धारण किया जाता है। इसलिए इसे 'विषय क्षेत्र' भी कहा गया है। उदाहरण के लिए; कार्यालय, पत्रकारिता, इंजीनियरी, वाणिज्य, विज्ञान आदि की भाषा में जो भेद दिखाई देता है वह 'विषय' पर ही आधारित है। वास्तव में विषय के आधार पर जिन प्रयुक्तियों का निर्माण होता है उनकी पारिभाषिक शब्दावली तथा भाषा संरचना एक-दूसरे से भिन्न होती है। विज्ञान, इंजीनियरी, चिकित्साशास्त्र, विधि आदि के भाषा-रूप तकनीकी प्रयुक्ति में आते हैं और कार्यालय, वाणिज्य, पत्रकारिता आदि के भाषा रूप अर्ध-तकनीकी प्रयुक्ति के अंतर्गत आते हैं।

वार्ता प्रकार: इसमें यह देखा जाता है कि भाषा का प्रयोग मौखिक रूप में किया जा रहा है या लिखित रूप में, क्योंकि मौखिक भाषा में प्राय: वाक्य रचना पूर्ण नहीं रहती या उसका सुव्यवस्थित रूप नहीं होता। कभी-कभी ध्वनियों तथा शब्दों का भी लोप हो जाता है। उच्चारण भेद, ध्वनियों के आरोहण-अवरोहण तथा वक्ता के मुख और अन्य अंगों द्वारा प्रदर्शित हाव-भाव से वाक्य का पूरा अर्थ समझा जाता है, जबकि लिखित भाषा में पूर्ण शब्दों की सही वर्तनी के साथ पूर्ण वाक्य लिखे जाते हैं। यह भाषा प्राय: व्यवस्थित और संपादित होती है। इस दृष्टि से तकनीकी भाषा प्राय: लिखित रूप में सामने आती है। कार्यालयी भाषा मुख्यत: लिखित होती है। इसके साथ आकाशवाणी या दूरदर्शन में प्रसारित समाचारों की भाषा लिखित भाषा या पठित या मौखिक रूप होता है।

वार्ता शैली: इसमें वक्ता-श्रोता या लेखक-पाठक संबंध अधिक महत्वपूर्ण है। अधिकारी और कर्मचारी के बीच या कर्मचारी-चपरासी के बीच या यजमान और अतिथि के बीच सामाजिक संबंध के साथ भाषा-शैली बदलती है। सामाजिक संदर्भों, स्तरों और संबंधों के परिप्रेक्ष्य में भाषा की मुख्य रूप से पाँच शैलियाँ स्वीकार की गई हैं- रूढ़िगत, औपचारिक, सामान्य, अनौपचारिक और अंतरंग। तकनीकी भाषा-रूप प्राय: रूढ़िगत, औपचारिक और सामान्य होते हैं, लेकिन अर्ध तकनीकी या गैर-तकनीकी रूप औपचारिक, सामान्य तथा अनौपचारिक आदि शैलियों में मिल जाते हैं। विज्ञान की भाषा प्राय: रूढ़िगत, औपचारिक या सामान्य तीनों शैलियों में मिलती है। इसी प्रकार आकाशवाणी और दूरदर्शन में विज्ञापन की भाषा प्राय: औपचारिक और अनौपचारिक दोनों शैलियों में मिलती है।

प्रयुक्ति और शैली

प्रयुक्ति और शैली में कोई विशेष अंतर नहीं है। यह अंतर केवल सामाजिक स्थिति या कार्यक्षेत्र के भेद का कारण किया जा सकता है। शैली के संदर्भ में विभिन्न भूमिकाओं की प्रधानता रहती है जबकि प्रयुक्ति कार्य-क्षेत्र या विषय-क्षेत्र प्रधान है। प्रयुक्ति विशेष की शैली के लिए औपचारिक प्रशिक्षण की आवश्यकता रहती है जबकि सामाजिक शैली में इसकी कोई आवश्यकता नहीं। प्रयुक्ति व्यवसाय या विषय विशेष से जुड़ी हुई है जबकि सामाजिक शैली का संबंध सामाजिक परंपरा और संस्कृति से है। इस प्रकार प्रयुक्ति-विशेष शैली और सामाजिक शैली विभिन्न भूमिकाओं के कारण अलग-अलग हैं किन्तु वे हैं भाषा-शैली के रूप ही।

हिन्दी की प्रयुक्तियाँ

प्रयुक्तियों का संबंध भाषा से रहता है और विभिन्न संदर्भों में भाषा के स्वरूप में भी परिवर्तन होता जाता है। इस दृष्टि से भाषा की प्रकृति लचीली होती है। इसलिए किसी भी भाषा से कोई भी काम लिया जा सकता है। हिन्दी की प्रयुक्तियों को देखने से पहले हमें यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि भाषा प्रयुक्ति एक प्रकार का भाषा-रूप है। हिन्दी के इन विभिन्न भाषा-रूपों को दो दृष्टियों से देखा जा सकता है:

(1) भाषा-शैली का संदर्भ

(2) भाषा प्रयुक्ति का संदर्भ

भाषा- शैली की दृष्टि से हिन्दी की संस्कृतनिष्ठ या साहित्यिक हिन्दी, अरबी-फ़ारसी मिश्रित हिन्दी अर्थात् उर्दू और सामान्य बोलचाल की हिन्दी अर्थात् हिन्दुस्तानी जैसे भाषा शैलियाँ दिखलाई पड़ती हैं। इतना ही नहीं हिन्दी में एक ही विषय क्षेत्र में हम तीनों का प्रयोग कर सकते हैं। उदाहरण के लिए; हम उपन्यास लिखना चाहें या ज्ञान के लिए किसी भी क्षेत्र पर चर्चा करना चाहें तो हिन्दी की उपर्युक्त तीनों शैलियों में से किसी एक का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र हैं।

भाषा-प्रयुक्ति की दृष्टि से भाषा-शैली का संदर्भ भी भिन्न है। भाषा प्रयुक्ति का स्वरूप संस्कृत-मिश्रित, अरबी-फ़ारसी मिश्रित बंधनों से युक्त होता है और इसका संबंध प्रयोग-क्षेत्र से बनता रहता है। इसलिए हिन्दी प्रयुक्तियों में विषय भाषा को नियंत्रित करता है और इसी कारण विषय से संबंधित शब्दावली, विषय से संबंधित अभिव्यक्तियाँ तथा संबंधित वाक्य-संरचनाएँ रहती हैं। इसमें आवश्यकतानुसार एक शैली का या दो शैलियों का या तीनों का मिला-जुला प्रयोग किया जाता है।

(1) हिन्दी प्रयुक्तियों में भाषा का एक विशेष स्वरूप निर्मित हो चुका है। एक विषय के संदर्भ में एक शब्द का एक ही निश्चित अर्थ होता है चाहे सामान्य भाषा में दो-तीन शब्द एक ही अर्थ में क्यों न प्रयुक्त होते हों। उदाहरण के लिए; कार्यालयी (प्रशासन) क्षेत्र में आदेश, निदेश, अनुदेश जैसे पारिभाषिक शब्द अपनी-अपनी सैद्धांतिक संकल्पनाएँ लिए हुए कार्यालयी प्रयुक्ति में प्रयुक्त किए जाते हैं, जबकि सामान्य भाषा में इनका प्रयोग एक ही अर्थ में हो सकता है। कार्यालय की प्रयुक्ति में एक शब्द या अधूरे वाक्य पूरे वाक्य का अर्थ देते हैं- जैसे तत्काल, गोपनीय, आवश्यक कार्रवाई के लिए। इसी तरह कार्यालयी अभिव्यक्तियों का प्रयोग अन्य प्रयुक्तियों में नहीं होता। 'आपको चेतावनी दी जाती है', 'यह सूचित किया जाता है', 'यह मामला वित्त विभाग को भेजा जाए' जैसी वाक्य संरचनाएँ भी प्रशासनिक प्रयुक्ति की विशेषताएँ हैं। इस प्रकार हिन्दी की प्रयुक्ति में शब्द, पदबंध और वाक्य भिन्न स्वरूप लिए हुए हैं।

(2) व्यवसाय के क्षेत्र में मुद्रा, पूँजी, उत्पादन, सहकारिता, दिवालिया, बिचौलिया जैसे शब्दों के अर्थ और उनके प्रयोग व्यवसाय के क्षेत्र में सुनिश्चित हैं। दूसरी प्रयुक्तियों में यह संभव है कि इनके अर्थ में या इनके संदर्भ में भेद हो। व्यापारिक सूचनाओं में भाषा का प्रयोग एक विशेष ढंग से होता है। समाचारपत्रों में बाज़ार भाव पढ़ते समय 'सोना

लुढ़का, चाँदी ढीली, गेहूँ के भाव टूटे, मक्की में तेज़ी, जीरा फिर भड़का' आदि विशेष प्रयोग मिलते हैं।

(3) खेल-कूद की प्रयुक्ति के संदर्भ में हिन्दी में हमें सलामी बल्लेबाज, मुक्केबाजी, निर्णायक टेस्ट, साझेदारी, पारी, छक्का, चौका जैसे भाषा प्रयोग दिखाई देते हैं और इसके साथ ही बढ़त लेना, गोल दागना, पकड़ मजबूत होना जैसे भाषा प्रयोग भी मिलते हैं जो अन्य किसी प्रयुक्ति में इस्तेमाल नहीं होते।

(4) वैज्ञानिक भाषा की महत्वपूर्ण विशेषता संकेतों और प्रतीकों का प्रयोग है। वैज्ञानिक हिन्दी में ये संकेत प्राय: रोमन अथवा ग्रीक अक्षरों या चिह्नों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे, 'किरणों के नाम अल्फा (α) किरण, बीटा (β) किरण और गामा (γ) किरण' रखा गया है। परमाणु, घनत्व, गलनांक, पैट्रोल-चालित, आयनीकरण आदि शब्द अपना अलग अस्तित्व बनाए हुए हैं।

इन उदाहरणों से यह प्रमाणित होता है कि हिन्दी की प्रयुक्तियों का अपना संदर्भ, प्रकार्य और प्रयोग निश्चित हो गया है। इतना ही नहीं, प्रयुक्तियों की संरचना इतनी स्पष्ट हो गई कि हम उनके प्रयोग द्वारा ही यह कह सकते हैं कि यह कार्यालय की हिन्दी है, यह पत्रकारिता की हिन्दी है या यह बैंक में प्रयुक्त हिन्दी है।

हिन्दी प्रयुक्ति के विकास में विभिन्न धाराएँ

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 में हिन्दी को भारत की सामासिक संस्कृति का उपकरण मानते हुए उसके विकास के लिए मुख्य रूप से संस्कृत को अपनाया गया है। इसका कारण यह है कि संस्कृत से एक ही रूपावली के अनेक शब्दों का निर्माण किया जा सकता है। लेकिन इसके अतिरिक्त हिन्दी की प्रयुक्ति के विकास में कई अन्य धाराओं का भी योगदान रहा। इनमें प्रमुख हैं- पुनरुत्थानवादी, अंतर्राष्ट्रीयतावादी, लोकवादी और समन्वयवादी।

(1) पुनरुत्थानवादी धारा: इस धारा को शुद्धतावादी या राष्ट्रीयतावादी भी कहा जाता है। कुछ लोग इस धारा को संस्कृतवादी भी कहते हैं। इस धारा का आधार संस्कृत भाषा है तथा इस मत के समर्थकों के अनुसार संस्कृत शब्दों को हिन्दी में तत्सम रूप में ग्रहण किया जाए और आवश्यकता के अनुसार हिन्दी के शब्दों का निर्माण भी संस्कृत के धातु,

उपसर्ग, प्रत्यय आदि के आधार पर किया जाए। इसी आधार पर पारिभाषिक शब्दावली में बहुत से शब्दों को लिया गया और बनाया गया है। उदाहरण के लिए; ईक्षण' धातु के साथ उपसर्ग या प्रत्यय लगाने से वीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण, निरीक्षण, पर्यवेक्षण, अधीक्षण, संवीक्षा, परीक्षा, परीक्षक, संवीक्षक, नरीक्षक, पर्यवेक्षक, सर्वेक्षक आदि शब्द बन जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि यह विशेषता अंग्रेजी से ग्रहीत या लोक प्रचलित शब्दों में नहीं है, क्योंकि इन भाषाओं में संस्कृत भाषा के समान संश्लेषणात्मकता और उर्वरता नहीं है।

(2) अंतर्राष्ट्रीयतावादी धारा: इस प्रयुक्ति को शब्दग्रहणवादी, आदानवादी, स्वीकारवादी भी कहा जाता है। इसके समर्थकों का कहना है कि अंग्रेजी एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। भारत में भी कई भाषाएँ हैं, इसलिए सभी भाषा-भाषियों की सुविधा के लिए अंग्रेजी के शब्दों को उसी रूप में या हिन्दी भाषा की ध्वनि के अनुरूप लेना चाहिए। इससे अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को याद रखने में सुविधा होगी। लेकिन सभी शब्दों को हिन्दी अपने-आप में आत्मसात नहीं कर सकती। इस धारा के उदाहरण के रूप में हम राडार, किलोग्राम, टन, लीटर, मीटर, हाइड्रोजन, हीलियम आदि शब्दों को देख सकते हैं।

(3) लोकवादी धारा: यह साधारणत: जन सामान्य में प्रयुक्त है। इसकी प्रकृति स्वंभाषावादी होती है। इसके समर्थक लोक प्रचलित शब्दों के आधार पर ही पारिभाषिक शब्द बनाने के पक्षधर हैं। डाकघर, मसौदा, दलबदलू, घेराव, रेलगाड़ी, आलाकमान, आदि अनेक शब्द इस धारा के उदाहरण के रूप में अपनाए गए हैं। जन साधारण में अर्थ संप्रेषण की दृष्टि से देखा जाय तो यह धारा उचित है परन्तु पर्याप्त संख्या में लोक प्रचलित शब्द उपलब्ध नहीं है। उदाहरण के लिए; दूरदर्शन या टेलीविजन, आकाशवाणी या आल इंडिया रेडियो, लेखापरीक्षक या आडीटर आदि के लिए लोक निर्मित शब्द बनाना कठिन है।

(4) समन्वयवादी धारा: भारतवर्ष बहुभाषी देश है। इसलिए अधिकतर विद्वान इस मध्यमार्गी धारा के पक्ष में हैं। इस धारा में पुनरुत्थानवादी, अंतर्राष्ट्रीयवादी, लोकवादी तीनों दृष्टिकोणों को समन्वित रूप में किया गया है। शब्द ग्रहण के लिए उन शब्दों पर बल दिया जाता है जो संदर्भ के साथ उपयुक्त हों। इस प्रकार के शब्दों को विभिन्न देशी भाषाओं, बोलियों से या संस्कृत से या अंग्रेजी से लिया जा सकता है। इस धारा के अंतर्गत प्रचलित शब्दों को समाज की आवश्यकताओं के अनुसार ग्रहण किया जाता है। इसमें ऐसे अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को भी लिया जा सकता है, जिनका प्रयोग कई देशों में होता हो; जैसे-

ऑक्सिजन, नाइट्रोजन, न्यूटान, प्रोटान, विटामिन आदि हिन्दी में प्रचलित हैं। भारतीय भाषाओं में कई प्रचलित शब्दों को ग्रहण किया गया है जैसे अणु, तार, महाद्वीप। इसमें संस्कृत शब्दावली को भी आधार माना गया है, जिससे आवश्यकतानुसार शब्दों का निर्माण किया जा सकता है। जैसे मानव से मानवीय, मानवता, मानवीकरण, मानविकी। हिन्दी पर अरबी-फ़ारसी का काफी प्रभाव है, इसलिए जिला, हलफनामा, वकालतनामा, ज़मानत, कानून आदि कई शब्द ग्रहण किए गए हैं। इसके अलावा विभिन्न भाषाओं से भी शब्दों को लिया गया है जैसे बंगला से बाहिनी, मराठी से पावती। बोधगम्यता और सरलता को ध्यान में रखते हुए समस्त शब्दों का अनुवाद एक रूप में किया गया है। जैसे- 'टेली' शब्द के लिए 'दूर' शब्द है और इससे दूरदर्शन, दूरभाष, दूरमुद्रक, दूरसंचार आदि कई शब्द बनाए गए हैं। इसी कारण हिन्दी में तीनों प्रवृत्तियों को आसानी से देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए चुनाव-निर्वाचन-इलेक्शन, जच्चा घर-प्रसूतिगृह-मैटरनिटी होम, अदालत-कचहरी-न्यायालय-कोर्ट। इसके अतिरिक्त फिल्म अभिलेखागार, बेबाकीपत्र ऐसे संकर शब्द हैं जो हिन्दी की शब्दावली का संवर्धन करते हैं।

इस प्रकार मानव के दैनिक जीवन में विभिन्न संदर्भों, विषयों और कार्यक्षेत्रों के परिप्रेक्ष्य में कई प्रयोगतम भेद उभर आते हैं। इन प्रयोगगत भेदों की अपनी विशिष्ट भाषा होती है और उनके विशिष्ट प्रयोजन होते हैं। वास्तव में भाषा परस्पर संप्रेषण का एक ऐसा उपादान है जिसकी सहायता से व्यक्ति विशेष परिस्थिति, संदर्भ तथा विशिष्ट प्रयोजन में इसका प्रयोग करता है और वह प्रयोग उसी संदर्भ, प्रयोजन और परिस्थिति में सटीक तथा उपयुक्त बैठता है।